भारत में जनहित का कानून : लेखा परीक्षा की घड़ी
Public Interest Litigation in India: Time for an Audit

वरुण गौरी
Varun Gauri
11.9.09

भारत में जनहित का कानून (PIL) लगभग तीस साल पहले उस समय लागू हुआ था जब कानून को जन-जन तक पहुँचाने के लिए आवश्यक कार्यविधि अपनाई जा रही थी. इसका उद्देश्य था, सामाजिक न्याय के लिए न्यायालयों का उपयोग करना. इंदिरा गाँधी द्वारा आपात् स्थिति लागू करने में न्यायालय की मिलीभगत के कारण फिर से गरीबों और सर्वहारा का विश्वास जीतने के लिए ही न्यायालय ने इसके लिए नियमों में और कानूनी कार्रवाई शुरू करने या उसमें भाग लेने, मामला दर्ज करने और प्रतिपक्ष की प्रक्रिया से संबंधित अदालती परंपराओं में भी कुछ छूट दे दी थी और न्यायिक सुधार भी कर दिए थे. 1980 के दशक में और 1990 के दशक के आरंभ में उच्चतम न्यायालय ने कैदियों के अधिकार, बंधक मजदूरों, फुटपाथ पर रहने वाले लोगों और बच्चों के संबंध में सामाजिक न्याय से जुड़े अनेक महत्वपूर्ण मामलों में निर्णय दिए. जैसे-जैसे दावेदारों और उनके वकीलों को यह लगने लगा कि वे जनहित कानून से संबद्ध उदार कार्यविधि में दी गई छूट का लाभ ले सकते हैं, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में जनहित कानून के मामले अधिक से अधिक आने लगे. 1990 के दशक के मध्य से लेकर उत्तरार्ध तक इन न्यायालयों में जो मामले आए थे, वे शहरी प्रदूषण और ठोस कचरा निपटान जैसे पर्यावरण संबंधी सरोकारों से जुड़े हुए जटिल मामले थे और साथ ही कुछ मामले सरकारी भ्रष्टाचार और चुनाव से जुड़े साफ़ तौर पर राजनीतिक मामले थे. कई लोगों को तो यह लगने लगा है कि कुछ दावेदार और उनके वकील निजी मामलों को भी जनहित मामलों के रूप में पेश करने की तरकीब सोचने में लगे हैं. मानवाधिकार के कार्यकर्ता तो यह देखकर निराश होने लगे हैं कि न्यायालय व्यापक आदेश देने से भी कतराने लगे हैं. हाल ही में कई कार्यकर्ताओं ने तो विधायिका और कार्यपालिका के क्षेत्र में न्यायालय के हस्तक्षेप पर और अपने ही कुछ खर्चीले आदेशों को कार्यान्वित करने के लिए अदालती कार्रवाई की संवैधानिकता पर सवाल उठाए हैं.

मोटे तौर पर कहें तो जनहित कानून को लेकर दो प्रकार की चिंताएँ हैं. एक तो यह कि न्यायालय शक्ति के विभाजन से जुड़े मामलों में हस्तक्षेप करने लगे हैं. क्या विधायिका और कार्यपालिका इन सामाजिक और आर्थिक मामलों से निपटने में अधिक सक्षम नहीं हैं, क्या इसे न्यायिक हस्तक्षेप नहीं माना जाएगा, खास तौर पर तब जबकि यह स्पष्ट हो कि न्यायालय इन मामलों में न तो अपने व्यापक आदेशों को कार्यान्वित करते हैं और न ही करा सकते हैं. क्या इससे न्यायालय की वैधानिकता का ह्रास नहीं होता ? न्यायालयों द्वारा शक्तियों को हड़पने के

विरोध में व्यापक तौर पर स्वर उठने लगे हैं और इसकी स्पष्ट प्रतिक्रिया यह हुई कि जनहित कानून को विनियमित करने के लिए 1996 में राज्यसभा में एक विधेयक लाया गया और प्रधानमंत्री ने 2007 में न्यायालय को उनकी मर्यादाओं के लाँघने के विरुद्ध चेतावनी देते हुए एक बयान भी दिया और जनहित कानून के सीमांकन के लिए न्यायपीठ स्थापित करने के लिए कहा. उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने सदस्यों को नियंत्रित करने की शक्तियों और सूचना के अधिकार संबंधी याचिकाओं के मद्देनज़र सूचनाओं को घोषित करने में उच्चतम न्यायालय की आनाकानी से इस धारणा को बल मिला है कि भारत में न्यायिक शक्तियों पर कोई लगाम नहीं है.

न्यायिक निर्णय की प्रक्रिया में पारदर्शिता और जवाबदारी के व्यापक प्रश्न के बजाय जनहित कानून के बारे में विचार करते समय यह भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि कई मामलों में इसने लोकतंत्र के पक्ष में महत्वपूर्ण भूमिका का निभाई है. दूसरे शब्दों में यदि कहा जाए तो सरकार में पारदर्शिता और जवाबदारी के मूल्यों को स्थापित करने में इस कानून की महत्वपूर्ण भूमिका रही है. जनहित कानून का एक महत्वपूर्ण उपयोग यह भी है कि बड़े सामाजिक कार्यक्रमों की लागत (जिसे कभी-कभी सरकार और कॉर्पेरेट कार्यालय भी या तो बढ़ा-चढ़ाकर पेश करते हैं या फिर छिपा लेते हैं) जैसी प्रच्छन्न और भ्रामक सूचनाओं को सार्वजनिक कर देना. सन् 2001 में जब राजस्थान और उड़ीसा में सूखा पड़ा था तो जनहित कानून की सहायता से ही सरकार के उस अनाज भंडार का पर्दाफ़ाश किया जा सका था, जिसे अभी तक वितरित ही नहीं किया गया था. उसके बाद जनहित कानून के कारण यह भी पता चला कि वास्तव में राज्य सरकारें स्कूलों में मध्याह्न भोजन योजना सहित अनाज और पोषण के अनेक सांविधिक कार्यक्रमों को लागू करने का खर्च उठा सकती थीं, जबकि सरकारें आधिकारिक रूप में इससे उलटे बयान देती रही थीं.

दिल्ली के वाहन प्रदूषण संबंधी वाद-विवाद में दिल्ली के स्वास्थ्य मंत्री ने दावा किया था कि वायु प्रदूषण से दिल और फेफड़े की बीमारियों का कोई खतरा नहीं है, दिल्ली सरकार ने कहा था कि निर्धारित समय-सीमा में सीएनजी स्टेशनों की स्थापना करना संभव नहीं है, पैट्रोलियम व प्राकृतिक गैस मंत्रालय ने तर्क दिया था कि सीएनजी बसों का कन्वर्शन लंबे समय तक नहीं चल पाएगा, व्यावसायिक वाहनों के उत्पादकों ने कहा था कि सीएनजी आर्थिक दृष्टि से किफ़ायती नहीं है और कुछ अन्य लोगों ने यहाँ तक कह दिया था कि सीएनजी विस्फोटक है. न्यायालय ने इन मामलों पर सही सूचनाओं की तसदीक करने के लिए कुछ तकनीकी समितियों को मोटे तौर पर आवश्यक अधिकार देकर अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था. यह उदाहरण न्यायिक आदेश का नहीं, बल्कि न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच सहयोग का है. रुथ

ग्रीनस्पैन बैल, कुलदीप माथुर, उर्वशी नारायण और डेविड सिम्पसन ने इस दृष्टांत का अध्ययन करते हुए यह पाया है कि "वास्तव में सरकारी विशेषज्ञ अनिवार्यतः ऐसे मामलों में न्यायालय के सलाहकार बन जाते हैं, जिससे नीतियों के कार्यान्वयन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है." शक्तियों के विभाजन की आलोचना तो सही है, लेकिन सामान्य रूप में यदि कहा जाए तो ये उदाहरण क्षेत्रीय शासन पर न्यायिक हस्तक्षेप के प्रभाव को दर्शाते हैं और ये सैद्धांतिक न होकर अनुभवजन्य होते हैं. क्या जनहित कानून के माध्यम से न्यायिक हस्तक्षेप से किसी क्षेत्रविशेष में राज्य सरकारों के कार्यपरिणामों में सुधार लाया जा सकता है? अन्यथा और क्या हो सकता था? उदाहरण के लिए क्या वन संबंधी नीति न्यायालय के कारण ही अधिक समतामूलक, कुशल और प्रभावी नहीं हो गई है? ये प्रश्न सैद्धांतिक न होकर अनुभवजन्य हैं और जनहित कानून पर छिड़ी बहस से अनुभवजन्य चुनौतियों को और अधिक गंभीरता से लेने का लाभ मिल सकता है.

शक्तियों के विभाजन से जुड़े सरोकारों के अलावा कुछ नए प्रश्न जनहित कानून के वितरण संबंधी प्रभाव को लेकर उठे हैं. क्या जनहित कानून से जुड़े मामलों से आम आदमी को लाभ पहुँचता है या उसे नुक्सान होता है या फिर जीवनशैली से जुड़े सरोकार इतने महत्वपूर्ण हो गए हैं कि मध्यम वर्ग भी अपने सरोकारों को जनहित कानून से जुड़े मामलों के रूप में पेश करना सीख गया है ? दो दशक पहले जब जनहित कानून लागू किया गया था तो न्यायाधीश जिस रूप में अपनी साहसिक भूमिका में दिखाई पड़ते थे, अब इसके विपरीत प्रकट रूप में क्या वे गरीब और सर्वहारा लोगों के हितों की अनदेखी करने लगे हैं? ये भी अनुभवजन्य प्रश्न ही हैं.

1997-07 के आँकड़े दर्शाते हैं कि पिछले दस वर्षों में जनहित कानून संबंधी मामलों की आवृत्ति में अपेक्षाकृत निरंतरता रही है. उच्चतम न्यायालय के "कोर्ट न्यूज़" प्रकाशन में सार्वजनिक रूप से उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर समग्र तौर पर लगभग साठ हज़ार मामलों के मुकाबले औसत रूप में हर साल लगभग 260 मामले जनहित कानून से जुड़े हुए थे. इसमें प्रवेश और नियमित दोनों ही प्रकार के मामले शामिल हैं. औसत रूप में न्यायालयों के सामने आने वाले लगभग 0.4 प्रतिशत "मामले" जनहित कानून से जुड़े थे.

ऑन लाइन डेटाबेस से जनहित कानून संबंधी मामलों का पता लगाना बहुत मुश्किल है, लेकिन बुनियादी अधिकारों से संबंधित दावों के परिणामों की जाँच-परख करके यह आरोप सिद्ध किया जा सकता है कि इनका झुकाव मध्यम वर्ग की ओर रहा है. नीचे दिए गए ग्राफ़ के पहले आँकड़े उन दावेदारों द्वारा जीते हुए मामलों से संबंधित हैं, जो लाभग्राही वर्ग के सदस्य नहीं हैं और उसके बाद उच्चतम न्यायालय संबंधी बुनियादी अधिकारों से जुड़े महिलाओं और बच्चों के अधिकारों के मामले हैं और उसके बाद जातिगत मामले दर्शाए गए हैं. इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 1980 के दशक के उत्तरार्ध तक लाभग्राही वर्ग के दावेदारों द्वारा जीते गए औसत मामले

अलाभग्राही वर्ग के दावेदारों की तुलना में बहुत कम थे. आज लाभग्राही वर्ग के दावेदारों के औसत जीते गए मामले अलाभग्राही वर्ग के दावेदारों की तुलना में बहुत अधिक हैं. उदाहरण के लिए लाभग्राही वर्ग के दावेदारों द्वारा जीते गए बुनियादी अधिकार संबंधी संभावित मामलों का प्रतिशत 73 था जिनमें आदेश या निर्णय 2000-08 से दिए जा रहे हैं,जबकि उन्हीं वर्षों के दौरान अलाभग्राही वर्ग के दावेदारों के जीत की दर 47 प्रतिशत रही. 1990 के दशक में यह प्रतिशत क्रमशः 68 और 47 प्रतिशत रहा, परंतु 1990 से पूर्व के वर्षों में अलाभग्राही वर्ग के दावेदारों द्वारा जीते गए मामले लाभग्राही वर्ग के दावेदारों की तुलना में बहुत अधिक थे.1990 और 2000 के दशकों के अंतर सरल चि-वर्ग परीक्षण और सरल प्रोबिट आकलन के आधार पर एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं.

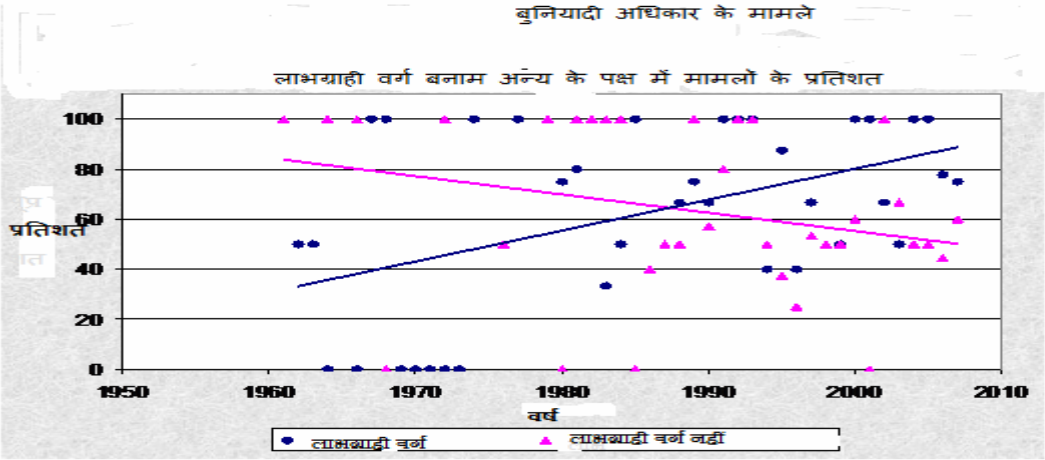

इसीप्रकार अ.जा.(अनुसूचित जाति) /अ.ज.जा. (अनुसूचित जनजाति) / अन्य पिछड़े वर्ग के मामलों के सबसेट में दावेदार वे हैं जो अ.जा. /अ.ज.जा. / अन्य पिछड़े वर्ग के नहीं हैं. इनकी जीत की वार्षिक औसत दर 1990 के दशक से बढ़ने लगी है.

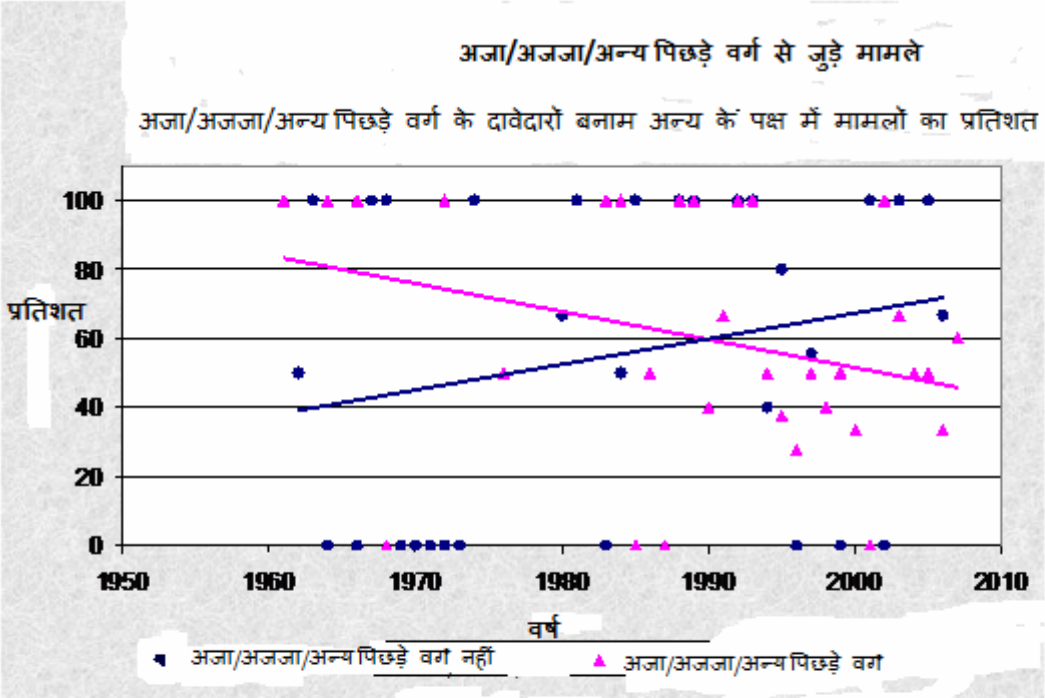

ये परिणाम उस दावे के अनुरूप हैं, जिसमें कहा गया है कि गरीब और सर्वहारा लोगों की ओर से उच्चतम न्यायालय में बुनियादी अधिकारों की न्यायिक ग्रहणशीलता से संबंधित प्रविष्ट दावों की संख्या में पिछले कुछ वर्षों से गिरावट आने लगी है. ये परिणाम अनंतिम हैं और इनकी विस्तृत छानबीन की आवश्यकता है. यह समझना ज़रूरी है कि जनहित कानून से जुड़े कई सरोकारों के लिए अनुभवजन्य अनुसंधान आवश्यक है. यह लेखा परीक्षण की घड़ी है.

वरुण गौरी विश्व बैंक के विकास अनुसंधान समूह में वरिष्ठ अर्थशास्त्री हैं. यह लेख विश्व बैंक नीति अनुसंधान के कामकाजी आलेख श्रृंखला में प्रकाशित उनके ही एक लेख [भारत में जनहित का कानूनः आशा से अधिक या आशा से कम उपलब्धि?] से लेकर रूपांतरित किया गया है. ज़रूरी नहीं है कि इस लेख में प्रकाशित विचार विश्व बैंक के विचारों के अनुरूप हों.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार

<malhotravk@gmail.com>